विपश्यना

साधकों का मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष २५४७, ज्येष्ठ पूर्णिमा, १४ जून, २००३ वर्ष ३२ अंक १२

धम्मवाणी

येसञ्च सुसमारद्धा, निच्चं कायगता सति।
अकिच्चं ते न सेवन्ति, किच्चे सातच्चकारिनो।
सतानं सम्पजानानं, अत्थं गच्छन्ति आसवा॥

धम्मपद-२९३.

जिनकी कायानुस्मृति नित्य उपस्थित रहती है (याने, जो सतत कायएवं कायमें होने वाली संवेदनाओं के प्रति जागरूक रहते हैं), वे (साधक) कभी कोई अकरणीय काम नहीं करते, सदा करणीय ही करतेहैं। (ऐसे) स्मृतिमान और प्रज्ञावान (साधकों)के आश्रव क्षय को प्राप्त होते हैं (उनके चित्त के मैल नष्ट होते हैं)।

[धारण करे तो धर्म]

बाहर-भीतर सच एक ही है

(जी-टीवी पर क्रमशः चौवालीस कड़ियों में प्रसारित पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों की छब्बीसवीं कड़ी)

'विपश्यना' भारत की बहुत पुरातन विद्या, बहुत पुरातन विद्या। कितनी वैज्ञानिक! कितनी सार्वजनीन! जिसका अभ्यास कोई भी कर सके।जैसे शरीर को स्वस्थ रखने के लिए कोई व्यक्ति किसी योगाश्रम में जाकर के आसन सीखता है, प्राणायाम सीखता है, शरीर को स्वस्थ रखने की विद्या सीखता है तो उसके लिए आवश्यक नहीं कि वह किसी एक संप्रदाय से किसी दूसरे संप्रदाय में दीक्षित हो जाय। चाहे जिस संप्रदाय का व्यक्ति हो। चाहे जिस बोली-भाषा का हो। चाहे जिस रूप-रंग का हो। चाहे जिस जाति, गोत्र, वर्ण का हो। कुछ फर्क नहीं पड़ता। आसन करेगा, प्राणायाम करेगा तो शरीर स्वस्थ रहेगा। शरीर स्वस्थ रहेगा तो उसका मन पर भी अच्छा असर पड़ेगा। ठीक इसी प्रकार यह विपश्यना मन की कसरत है। सांस के सहारे-सहारे कोई भी व्यक्ति काम शुरू कर सकता है। सार्वजनीन बात है।

और फिर अंदर डुबकी लगा करके सारे शरीर में **"काये कायानुपस्सी विहरति"** – काया के भीतर काया के बारे में जो सच्चाई है, उसकी अनुपश्यना करता है। अनुपश्यना करता है माने क्षण-प्रतिक्षण, क्षण-प्रतिक्षण अनुसरण किये जा रहा है। विपश्यना का अनुसरण किये जा रहा है माने विपश्यना टूटती नहीं, चले जा रही है क्षण-प्रतिक्षण, क्षण-प्रतिक्षण। और काया पर संवेदनाएं क्या हो रही हैं? तो **"वेदनासु वेदनानुपस्सी विहरति"**। जो वेदनाएं हो रही हैं उनको अनुभूतियों के स्तर पर देख रहा है, जान रहा है। फिर **"चित्ते चित्तानुपस्सी विहरति"** – चित्त में क्या चल रहा है? कोई विकार जागा है या नहीं जागा है, जागा है या दूर हुआ है? और **"धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति"** – चित्त पर जो कुछ जागा है – चिंतन हो, कोई विचार हो, विकार हो – उन सबको साक्षीभाव से देखता है। तो बस काया और चित्त। काया और चित्त। इन दोनों के प्रपंच को देखते-देखते विकारों के उद्गम को देखता है। उनके प्रजनन को देखता है। उनके संवर्धन को देखता है। देखता है और अपने पुराने स्वभाव से बाहर निकलता है। कोई भी कर सकता है ना! इस विद्या को सीख कर, जीवन में उतारने में किसी को क्या कठिनाई होगी? किसी एक संप्रदाय से किसी दूसरे संप्रदाय में दीक्षित होने की आवश्यकता नहीं। इस सार्वजनीन विद्या का लाभ उठाए। जैसे आसन और प्राणायाम सार्वजनीन विद्या। वैसे ही विपश्यना – काया और चित्त को साक्षीभाव से देखने की सार्वजनीन विद्या, विकारों को जड़ों से निकालने की सार्वजनीन विद्या।

लगता है संतों को इसकी खोज तो थी ही। उनकी कुछ वाणी हमारे सामने आयी। श्रीमद्-राजचंद्र एक गृहस्थ संत थे। अपने यहां गृहस्थ संतों की भी एक परंपरा रही। नानक गृहस्थ संत थे। कबीर गृहस्थ संत थे। ऐसे ही ये भी गृहस्थ संत थे। तरह-तरह के तप किये, जप किये। व्रत किये, उपवास किये। बहुत तरह के किये और कहते हैं –

'बहु साधन बार अनंत कर्यो, तद भी कछु हाथ अजु न पर्यो॥

अरे, कितने प्रकार के साधन करके देख लिये। कितना जप किया, तप किया। कितने व्रत किये। और सचमुच हम उनका चित्र देखते हैं – हड्डियों का ढांचा मात्र रह गया। कितने व्रत, उपवास किये होंगे। कहता है – **'तद भी कछु हाथ अजु न पर्यो।'** तो संत स्वयं विचारते हुए अपने आपसे कहता है –

'क्यों न विचारत है मन में, कछु और रह्यो उस साधन में॥'

जो भारत की पुरानी साधना थी, उसमें कोई और बात थी। फिर आगे कहता है –

'कोई सत्य सुधा दरसावहिंगे, चतुरांगळ हे दृग ते मिलिहैं॥'

वह सुधा, वह अमृत का रास्ता, सच्चे अमृत का रास्ता कोई अवश्य ही दिखायेगा। **चतुरांगळ हे दृग ते मिलिहैं** – ये जो आंखें हैं इनसे चार अंगुल की दूरी पर यह रास्ता मिलेगा। भविष्यवाणी की – चार अंगुल के बाद ये जो नासिका के द्वार हैं, यहां से अमृत तक जाने का रास्ता मिलेगा। यही तो विपश्यना है। आरंभ तो यहीं से करना होता है। इस दरवाजे पर अपने मन को तीन दिन तक लगाने का प्रयत्न करेंगे। स्थित करने का प्रयत्न करेंगे और फिर होते-होते सारे शरीर की यात्रा करेंगे।

कायानुपस्सी विहरति – अपने भीतर इस सारी काया में क्या हो रहा है? **वेदनासु वेदनानुपस्सी विहरति। 'आतापी'** – यही तपस्या है। बाहर की तपस्या नहीं, भीतर की तपस्या। यह अंतर्तप भी किस तरह का? **सम्पजानो** – संप्रज्ञान है, प्रज्ञा ही प्रज्ञा जाग रही है। प्रतिक्षण प्रज्ञा, प्रतिक्षण प्रज्ञा, **आतापी सम्पजानो सतिमा** – सतिमान – स्मृतिमान,

सजग। काया में स्थित होगा और स्थित होकर संप्रज्ञान वाला होगा और सजग होगा तो सारा रहस्य खुलता चला जाएगा। विकारों की परतें उतरती चली जायेंगी, उतरती चली जायेंगी। अपने बारे में क्या सच्चाई है?

आपे जाणे आपे आप, रोग न ब्यापे तीनों ताप॥

अपने आपको जाने। जानना शुरू किया कि सारे भव-ताप दूर हो जायेंगे, सारे संताप दूर हो जायेंगे। भीतर ऐसी शांति, ऐसा सुख। **निब्बाणं परमं सुखं** –इंद्रियातीत अवस्था का वह परम सुख भीतर ही प्राप्त होगा। विकारों के निकलने पर प्राप्त होगा। काम यहीं से आरंभ करना पड़ेगा और आगे जाकर के सारे शरीर में, शरीर का नन्हे से नन्हा हिस्सा भी छूटेगा नहीं। सारे शरीर में कहां क्या हो रहा है? कहां क्या हो रहा है? तो एक ओर काया में स्थित होकर के ,कायस्थ होकर के भीतर की सारी बात देख रहा है। दूसरी ओर बुद्धि का भी प्रयोग कर रहा है। समझ रहा है, भीतर क्या हो रहा है, क्यों हो रहा है? तो सारा शरीर जिन भौतिक परमाणुओं से बना है, कलापों से बना है –पृथ्वीधातु, अग्निधातु, जलधातु, वायुधातु –ये केवल नाम गिनाने के लिए नहीं कि हमारी परंपरा चार तत्त्व मानती है –पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु; और वह परंपरा कहती है चार नहीं, पांच तत्व हैं। वह परंपरा कहती है पांच नहीं सात तत्व हैं। अरे, इस झगड़े में क्या मिलेगा? इन चार तत्वों को महत्व इसलिए देते हैं कि इनकी वजह से संवेदनाएं जागती हैं। कभी इस प्रकार की, कभी उस प्रकार की।और संवेदनाएं जागती हैं तो उनके प्रति समता का भाव रखना है। किसी को अच्छी मान के राग न पैदा कर लें। किसी को बुरी मान कर द्वेष न पैदा कर लें। तो इसलिए इन चार धातुओं का महत्त्व। परमाणुओं के पुंज के पुंज, ढेर के ढेर –कभी पृथ्वीधातु की प्रधानता लिए हुए प्रकट होंगे। कभी अग्निधातु की प्रधानता लिए हुए प्रकट होंगे। कभी जलधातु की प्रधानता लिए हुए प्रकट होंगे। कभी वायधातु की प्रधानता लिए हुए प्रकट होंगे। बाकी सारी धातुएं भी साथ मिली हुई हैं। अष्ट-कलाप माने आठों एक साथ हैं। चारों महाभूत और उनके अपने-अपने गुण-धर्म-स्वभाव। वे सारे गुण-धर्म-स्वभाव प्रकट हो रहे हैं। एक-एक परमाणु का रंग-रूप, एक-एक परमाणु की आकृति नहीं दीखने लगेगी। देखने की आवश्यकता भी नहीं। अनुभूति पर उतारना है ना! तो अनुभूति पर उनका गुण-धर्म-स्वभाव उतरेगा। मोटे-मोटे स्तर पर समझें, शरीर में चारों धातु क्या हैं? जो ठोसपना है वह पृथ्वीधातु। भीतर जो हड्डियां हैं कि मांस है या जो कुछ ठोस है, वह पृथ्वीधातु। जो कुछ प्रवाहित होता है –खून, पेशाब, पीप आदि जो प्रवाहित होता है, वह जलधातु। जो गैसेज हैं, वह वायुधातु। जो उष्णता है, जो पाचन का काम करती है, वह अग्निधातु। यह मोटे-मोटे तौर पर समझने की बात है।

अनुभूति पर उतरेंगे तो देखेंगे कि किस तरह से भिन्न-भिन्न प्रकार की अनुभूतियां हो रही हैं। अग्नि-प्रधान धातुओं की अनुभूति किस प्रकार हो रही है? जलप्रधान धातुओं की अनुभूति किस प्रकार हो रही है। पृथ्वीप्रधान धातुओं की किस प्रकार हो रही है। वायुप्रधान धातुओं की किस प्रकार हो रही है। अपने आप अनुभूति पर उतरने लगे तो काम की बात हो गयी। बाहर की दुनिया में भी देखते हैं, जल है तो प्रवहमान है। शीतल हुआ तो पथरा गया; बर्फ हो गया और गर्म हुआ तो भाप बन गया, वायु हो गया। बदल गया तो यह इस समय की प्रधानता है। पहले जलधातु की प्रधानता थी, अब पृथ्वीधातु की प्रधानता हुई, अब वायुधातु की प्रधानता हुई और इन तीनों अवस्थाओं में उसमें टेंपरेचर है याने तापमान है। शीतल है या गर्म है तो अग्निधातु है। शरीर के भीतर भी ऐसा ही है।

इसीलिए कहा, **बाहर भीतर एको सच है**। लेकिन बाहर वाला सच हमारे मन को निर्मल नहीं कर सकता।इस भीतर वाले सच को समता से देखना शुरू कर दें, विपश्यना से देखना शुरू कर दें तो मैल उतारना शुरू कर देगा। **घूंघट के पट** उतरते चले जायेंगे, आवरण पर आवरण उतरते चले जायेंगे। देखना सीखें, क्या हो रहा है हमारे भीतर?

पृथ्वीधातु का क्या स्वभाव है! यह पथराती है। आकाश से घिर जाती है, आकाश को घेर लेती है। वजन है, भारीपन है, हल्कापन है। भारी से भारी तक से लेकर के हल्के से हल्के तक का यह सारा वजन का क्षेत्र, पृथ्वीधातु का स्वभाव है। तापमान का सारा क्षेत्र, गर्म से गर्म और शीतल से शीतल, जो कुछ भीतर अनुभव हो रहा है, वह अग्निधातु का स्वभाव है। बड़ी से बड़ी हलन-चलन से लेकर बहुत सूक्ष्म-सूक्ष्म हलन-चलन, इतनी सूक्ष्म कि पकड़ में भी ना आये, यह सारा वायुधातु का स्वभाव है। और जलधातु का स्वभाव –मोस्चर है, बांधे रखती है। इन सारे परमाणुओं को बांधे रखती है, शरीर को बांधे रखती है, यह उसका अपना स्वभाव है। यह सारा स्वभाव अनुभूतियों पर उतरता चला जायगा। गर्मी लगी कि सर्दी लगी। भारीपन लगा कि हल्कापन लगा। हलन-चलन हुई –बड़ी सुखद हलन-चलन हुई कि पुलक-रोमांच हुआ। जो कुछ भीतर अनुभव हो रहा है, हम उससे प्रभावित नहीं होंगे। प्रभावित इस माने में नहीं होंगे कि उसको अच्छा मान कर के कहीं उसके प्रति राग नहीं जगाने लगेंगे। उसे बुरा मान कर के कहीं उसके प्रति द्वेष नहीं जगाने लगेंगे। ये चारों महाभूत अपना स्वभाव प्रकट करते रहेंगे, और हम विचलित नहीं होंगे। हम अपने मन का संतुलन नहीं खोयेंगे।

मानस के चार खंड –विज्ञान, संज्ञा, वेदना, संस्कार।यह संज्ञा है, जो पहचानती है और मूल्यांकन करती है। जैसे-जैसे विपश्यना पुष्ट होती चली जायगी, जैसे-जैसे प्रज्ञा में स्थित होते चले जायेंगे – चलते-फिरते, खाते-पीते हर अवस्था में प्रज्ञा ही प्रज्ञा, प्रज्ञा ही प्रज्ञा। उसी को अपने यहां पुरानी भाषा में 'स्थितप्रज्ञ' कहा।प्रतिक्षण प्रज्ञा है। हर कामकरते हुए प्रज्ञा है। देख उदय हुआ, व्यय हुआ। चल रहे हैं तो भी उदय हुआ, व्यय हुआ। खा रहे हैं तो भी उदय हुआ, व्यय हुआ। आराम कर रहे हैं, उदय हुआ, व्यय हुआ। लेटे हैं कि बैठे हैं कि खड़े हैं कि चलते हैं। हर अवस्था में उदय-व्यय, उदय-व्यय। प्रज्ञा की अनुभूति है। प्रज्ञा अनुभव कर रही है। यह प्रज्ञा स्थिर होती चली जाय। अरे, जो उदय होता है, व्यय होता है। यह सारा शरीर-स्कंध, यह सारा चित्त-स्कंध इतना भंगुर, इतना नश्वर, इतना परिवर्तनशील। क्या राग करें, क्या द्वेष करें इसके प्रति? तो अनुभूतियों वाली वीतरागता आयी। बुद्धि-विलास नहीं है। अनुभूतियों वाली वीतद्वेषता आयी। अनुभूतियों वाली वीतमोहता आयी। जैसे-जैसे आगे बढ़ते चले जायेंगे, प्रज्ञा में स्थिर होते चले जायेंगे, 'स्थितप्रज्ञ' होते चले जायेंगे तब भीतर चाहे जो हो, उससे प्रभावित नहीं होंगे। इतना ही समझेंगे कि इस वक्त ऐसा हुआ है –बहुत गर्मी आयी कि बहुत सर्दी आयी। अरे, अग्निप्रधान परमाणु अपना स्वभाव दिखा रहे हैं। अरे, ये जलप्रधान परमाणु अपना स्वभाव दिखा रहे हैं। ये पृथ्वीप्रधान परमाणु अपना स्वभाव दिखा रहे हैं। ये वायुप्रधान परमाणु अपना स्वभाव दिखा रहे हैं। स्वभाव ही है इनका –उत्पन्न होना, नष्ट हो जाना। उत्पन्न होना, नष्ट हो जाना।

धीरे-धीरे आगे बढ़ेगा। सत्य का अनुसंधान कर रहा है तो जो सच्चाई प्रकट हो रही है, उसको साक्षीभाव से देखता है। चित्त बड़ा सूक्ष्म हो जाता है, तीक्ष्ण हो जाता है। तो प्रज्ञा भी तीक्ष्ण होती है, बींधती हुई, छेदन करती हुई, भेदन करती हुई; विभाजन, विघटन, विचयन, विश्लेषण करते-करते सारा का सारा ठोसपना खत्म होता है। इस विद्या से ही होता

है। काम करते-करतेजब उस अवस्था पर पहुँचते हैं, तब और ज्यादा स्पष्ट मालूम होता है कि भाई, अग्निप्रधान परमाणु क्यों उत्पन्न हुए? ये जलप्रधान क्यों उत्पन्न हुए? ये वायुप्रधान क्यों उत्पन्न हुए? ये पृथ्वीप्रधान क्यों उत्पन्न हुए? तो बात समझ में आयेगी कि हम अपनी जीवनधारा को आहार क्या दे रहे हैं? चार प्रकार के आहार देते हैं जिससे कि यह जीवनधारा आगे बढ़ती है।

जीवनधारा क्या है? शरीर और चित्त की मिली-जुली धारा ही जीवनधारा है। शरीर भौतिक है इसलिए इसको दो भौतिक आहार देने होते हैं। और चित्त को दो चैतसिक आहार देने होते हैं। इन्हीं के बल पर यह जीवनधारा आगे बढ़ती है। शरीर को क्या भौतिक आहार देते हैं? **एक आहार –** दिन में दो बार कि चार बार भोजन ले रहे हैं, वह भौतिक आहार है। क्या आहार दे रहे हैं? यह भोजन भी आज किस प्रकार का किया? अच्छा साधक हो और भीतर हर प्रकार की संवेदनाओं को जान सकने का अनुभव कर सकने की क्षमता बढ़ गयी हो, तब क्या होता है? खूब मालूम होगा कि कैसा भोजन किया? खूब मिर्च-मसालों वाला भोजन कर ले और कुछ देर के बाद बैठे ध्यान करने तो देखेगा कि बहुत गर्मी फूटती है भीतर से। अरे, ऐसा भोजन लिया ना! तो फूटेगी गर्मी। अग्निप्रधान आहार दिया तो अग्निप्रधान परमाणुओं को उत्पन्न करने लगा। गर्मी ही गर्मी, गर्मी ही गर्मी। बेचैनी ही बेचैनी। किसी दिन बहुत बासी, कोई तला हुआ या गरिष्ठ भोजन ले लें तो देखेंगे कुछ समय के बाद, अरे, बहुत आलस ही आलस, बहुत भारीपन – यह पृथ्वीप्रधान धातु। जिस तरह का आहार ले रहे हैं, उस प्रकार के परमाणु प्रकट हो रहे हैं।

दूसरा भौतिक आहार – हम कैसे वातावरण में रह रहे हैं? वह भौतिक वातावरण जो हमारे चारों ओर का है, हमारे शरीर का पोर-पोर उसे ग्रहण कर रहा है। एक व्यक्ति बहुत शीतल वातावरण में, शीतल प्रदेश में रहता है। उसका शरीर एक प्रकार का होगा। एक व्यक्ति बहुत उष्ण, बहुत गर्म देश में रहता है। उसका शरीर एक प्रकार का होगा। एक व्यक्ति बड़े स्वस्थ वातावरण में रहता है। उसका शरीर स्वस्थ होगा। एक व्यक्ति बड़े अस्वस्थ वातावरण में रहता है। उसका शरीर बड़ा अस्वस्थ होगा। अच्छा साधक होगा तो खूब समझेगा। अरे, जो भी प्रकट हो रहे हैं, जाने के लिए प्रकट हो रहे हैं! क्यों घबरायें? यों उसे साक्षीभाव से देखेगा।

ऐसे ही चित्त को जो चैतसिक आहार दे रहे हैं, उसका प्रभाव शरीर पर पड़ता है। **इस समय मेरी चित्तधारा को मैंने क्या आहार दिया?** क्रोध का आहार दिया, कि द्वेष का आहार दिया, कि राग का आहार दिया, कि भय का आहार दिया। जिस विकार का आहार दिया, वह परमाणुओं के रूप में प्रकट हो गया। माइंड कैसे मैटर में बदल गया? मैंने क्रोध का आहार दिया। अपनी चित्तधारा पर क्रोध जगाया। क्रोध जागा कि तुरंत देखता है सारे शरीर में गर्मी ही गर्मी, गर्मी ही गर्मी। अग्निप्रधान परमाणु, अग्निप्रधान परमाणु। इतनी गर्मी महसूस होने लगी। क्रोध का यही स्वभाव है। वह अग्निप्रधान परमाणु ही उत्पन्न करेगा। भय का आहार दिया, तो देखेगा सारे शरीर में कंपन है, धूजन है, कंपन है, धूजन है। वायुप्रधान परमाणु। आहार ऐसा दिया ना! आहार दिया चित्त को और प्रभाव पड़ा शरीर पर। शरीर में इस प्रकार के परमाणु उत्पन्न होने लगे और उनके प्रभाव से इस प्रकार की संवेदना होने लगी। तो चित्त को इस समय जो आहार दिया, उसने इस प्रकार के परमाणुओं का निर्माण किया। या यों कहें, इस प्रकार के परमाणुओं में वह परिवर्तित हो गया।

चित्तधारा को मैंने पहले क्या आहार दिया था? कभी मैंने चित्त को क्रोध का आहार दिया था तो उसका बीज है भीतर। जब वह फल देगा तो जैसा बीज वैसा फल। कुदरत के बँधे-बँधाये नियम। भीतर साफ मालूम होगा, जैसा बीज वैसा फल। तो क्रोध किया था कि द्वेष किया था कि ईर्ष्या की थी, तो जलन ही जलन पैदा की थी। अग्निप्रधान ही अग्निप्रधान परमाणुओं को उत्पन्न किया था। तो मानस की गहराइयों में, जड़ों में क्रोध का पूर्व आहार बीजरूप में संग्रहीत हैं और अब विपश्यना द्वारा जैसे उसे छेड़ दिया और वह प्रकट होकर के ऊपर आया अपना फल लेकर के। क्रोध का फल क्रोध के स्वभाव वाला ही होगा। क्रोध का स्वभाव माने क्रोध के बीज का स्वभाव अग्निप्रधान था, जलाने वाला था। अब उसका फल आया तो अग्निप्रधान, अग्निप्रधान। बड़ी जलन मालूम होगी। बड़ी जलन मालूम होगी।

किसी ठंडे प्रदेश में शिविर लगता है। हिमालय पर कई शिविर लगे। पश्चिम में शीतकाल में शिविर लगे। लोग कंबल ओढ़-ओढ़ के बैठते हैं। इतनी ठंड है लेकिन विपश्यना के बाद किसी-किसी को ऐसा होता है कि सारे कपड़े उतार कर फेंक ताहै। गर्मी के मारे, पसीने से लथपथ। अरे, क्या हो गया? वायुमंडल तो वही है, तापमान तो वही है। तुझे बुखार भी नहीं है। क्या हुआ? अरे, जो कुछ रजिस्टर कर रखा था भीतर अंतर्मन की गहराइयों में, अब उसकी उदीर्णा होने लगी। आगे जाकर के जो फल भविष्य में कभी आता, उसका त्वरितकरण होने लगा। अभी उसका फल आने लगा। फल आ रहा है, हम समता से देख रहे हैं, तो नष्ट हो रहा है।

ऐसे ही भय का फल आया। जब भय का बीज डाला था, तब धूजन-कंपन के साथ डाला था। तो धूजन-कंपन ही लेकर के आया। और अगर हम समता से नहीं देखते हैं तब क्रोध का बीज, क्रोध का जो फल लेकर के आया, अग्निप्रधान परमाणुओं को उत्पन्न किया और हम उससे व्याकुल होकर फिर नया क्रोध पैदा करने लगे तो संवर्धन होने लगा। संवर्धन होते-होते फिर अंतर्मन की गहराइयों में बैठ जायगा, पैठ जायगा। हमने और कूड़ा-कर्कट इकट्ठा कर लिया। लेकिन जब उसकी उदीर्णा हुई, उसका फल प्रकट हुआ और हम तो समता से देख रहे हैं। हम अपने मन का संतुलन नहीं खोते। अरे, अनित्य है भाई! वही संज्ञा जो कि ऐसा मूल्यांकन किया करती थी कि यह तो बहुत गर्मी है, अच्छी नहीं लगती। यह तो बहुत बुरी है, यह तो बहुत बुरी है। वही संज्ञा अब प्रज्ञा बन गयी तो **अनिच्च सञ्ञा –** 'अनित्य संज्ञा' अनित्यता का बोध करानेवाली हो गयी। संज्ञा बार-बार कहेगी, देख, अनित्य है। प्रज्ञा बन गयी ना! देख, अनित्य है। अरे, इतनी गर्मी हुई तो क्या हुआ? किसी-किसी को यूं लगता है जैसे भट्ठी में झोंक दिया गया हो। इतनी गर्मी! घबराता है तो मार्गदर्शक कहता है देख, थोड़ी देर समता से देख! क्या यह अनंतकाल तक रहने वाली है? देख तो! अरे, देखते-देखते समाप्त हो गयी। समाप्त ही हो गयी। तो संज्ञा कहती है, अनित्य है, अनित्य है। प्रज्ञा कहती है – अनित्य है, अनित्य है। यही **'अनिच्च सञ्ञा ञाण'** है। जब यह ज्ञान जागता है, जब यह बोधि जागती है तब विकारों का खात्मा होने लगता है। प्रकाश आ जाय तो अंधेरा टिक नहीं सकता। अपने-आप दूर हो जायेगा। जैसे ही यह बोधि जागेगी, प्रकाश जागेगा तो भीतर अंधकार रह नहीं सकता। परतों पर परतें; परतों पर परतें उतरती चली जायेंगी।

अरे, जितनी-जितनी परतें उतरती चली गयीं, उतना-उतना तो बोझ हल्का हुआ। जितने-जितने विकार निकल गये, उतने-उतने तो दुःख दूर हुए। और काम करते ही जायेंगे, करते ही जायेंगे तो विकार निकलते ही जायेंगे, निकलते ही जायेंगे। बड़ा मंगल होगा। बड़ा कल्याण होगा। स्वस्ति ही स्वस्ति होगी। मुक्ति ही मुक्ति होगी। ***

"जी"-टीवी पर धारावाहिक 'ऊर्जा'

आगामी जून महीने से "जी" टीवी पर हर रविवार प्रातः ९ बजे पूज्य गुरुदेव श्री सत्यनारायणजी गोयन्का के साथ की गयी प्रश्नोत्तरी **"ऊर्जा"** नामक शीर्षक से प्रसारित होने जा रही है। इसमें पूज्य गुरुदेवजी 'धर्म' की बारीकियों को विस्तार से समझायेंगे। पाठक अपने इष्टमित्रों एवं बंधु-बांधवों सहित इसका लाभ उठा सकते हैं।

***

नए उत्तर दायित्वः

भिक्षु आचार्य

१. भदन्त श्रद्धानंद

वरिष्ठ सहायक आचार्यः

१-२. श्री मोहनलाल एवं श्रीमती शीला केला, इंदौर
३. श्री रघुनाथ कुरुप, चेन्नई

नव नियुक्तियां

१-२. श्री गोविंद प्रकाश एवं श्रीमती वीणा अग्रवाल, मुंबई
३. श्री लक्ष्मी प्रसाद मण्डलेकर, जबलपुर (भूल सुधार)
४. श्री धर्ममान नेवा, नेपाल
५. श्री शर्दमान शाक्य, नेपाल
६. श्री भिंबारसिंह थापा, नेपाल
७. डॉ. (श्रीमती) यशोधरा प्रधान, नेपाल
८. श्रीमती लक्ष्मी मानंधर, नेपाल
९. सुश्री चंद्रदेवी मानंधर, नेपाल
10-11. Mr. Johan Wuketits & Mrs. Martina Urleb, Aust.
12-13. Mr. Scott Corley & Mrs. Kathleen O'Grady, USA

बालशिविर शिक्षक

१. श्रीमती रोशन मिराजकर, पुणे
२. सुश्री पंचशीला तभाने, नाशिक
३. अनागारिका न्यानावटी, नेपाल
४. अनागारिका कुसुम, नेपाल
५. श्री त्रिरत्न शाही, नेपाल
६. श्री कृष्ण प्रसाद भंडारी, नेपाल
७. सुश्री नीता केशरी श्रेष्ठ, नेपाल
८. श्रीमती चंद्रा शाक्य, नेपाल,
९. श्रीमती नंद माया नकर्मी, नेपाल
१०. श्रीमती सुमित्रा राजकर्णीकर, नेपाल
११. सुश्री कंचनलता ताम्राकार, नेपाल
१२. श्रीमती नैना चित्रकार, नेपाल
१३. श्री संदीप भाटिया, अमेरिका
14. Ms. Caroline Coons, USA
15. Mr. Matt Iverson, USA

दोहे धर्म के

अंतर की आंखे खुलें, प्रज्ञा जगे अनंत।
विपश्यना के तेज से, पिघले दुःख तुरंत॥

कर्म ग्रंथि की चित्त पर, जब उदीरणा होय।
तन पर हो संवेदना, मूरख समता खोय॥

सम्यक होय विपश्यना, देख अनित्य स्वभाव।
निज काया का चित्त का, बहता दिखे बहाव॥

अंतर जगे विपश्यना, भरे धरम भरपूर।
देखत देखत देखते, दुखड़े हों सब दूर॥

जिस पथ पर चलते हुए, चित्त शुद्ध हो जाय।
वह पथ ही कल्याण-पथ, धर्म-पंथ कहलाय॥

धन्यभाग सावुन मिली, निर्मल पाया नीर।
आओ धोयें स्वयं ही, मन के मैले चीर॥

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
११-१३, सनस प्लाजा, १३०२ बाजीराव रोड,
पुणे-४११००२, फोनः ४४८-६१९०
महालक्ष्मी मंदिर लेन, २२ भूलाभाई देसाई रोड,
मुम्बई-४०००२६, फोनः २४९२-३५२६
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

जद अंतर मँह साच रो, दरसण आरँभ होय।
देखत देखत देखतां, पाप निवारण होय॥

साच देखतां देखतां, परम साच दिख ज्याय।
जनम जनम री ग्रंथियां, सै की सै कट ज्याय॥

देखत देखत देखतां, चित निरमल हो ज्याय।
देखत देखत देखतां, भव बंधन कट ज्याय॥

छूटै मिथ्या धारणा, भ्रम निरमूलित होय।
काया चित रै खेल मँह, नित्य नहीं कछु होय॥

दुख चक्कर भीतर चलै, मूढ सकै ना देख।
ग्यान चक्छु जीं रा खुल्या, साच सकै बो देख॥

बढतो ही बढतो रवै, अंतर दुख परपंच।
ग्यान चक्छु स्यूं देखतां, दुक्ख रवै ना रंच॥

मेसर्स गो गो गारमेंट्स
३१ -४२, भांगवाड़ी शॉपिंग आर्केड,
१ला माला, कालबादेवी रोड, मुंबई - ४००००२.
फोनः ०२२- २२०५०४१४
की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादकः राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, दूरभाष : (०२५५३) २४४०८६, २४४०७६.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, ६९- बी रोड, सातपुर, नाशिक-४२२००७. **बुद्धवर्ष २५४७,** ज्येष्ठ पूर्णिमा, १४ जून, २००३

वार्षिक शुल्क रु. २०/-,विदेश में US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. २५०/-, " US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. १९१५६/७१.** Regn. No. AR/NSK-46/2003-05

Licenced to post **without Prepayment of postage** -- Licence number-- **AR/NSK-WP/3**
Posting day- Purnima of Every Month, Posted at **Igatpuri-422403,** Dist. Nashik (M.S.)

If not delivered please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
दूरभाष : (०२५५३) २४४०७६
फैक्स : (०२५५३) २४४१७६
Website: www.vri.dhamma.org
e-mail: info@giri.dhamma.org